

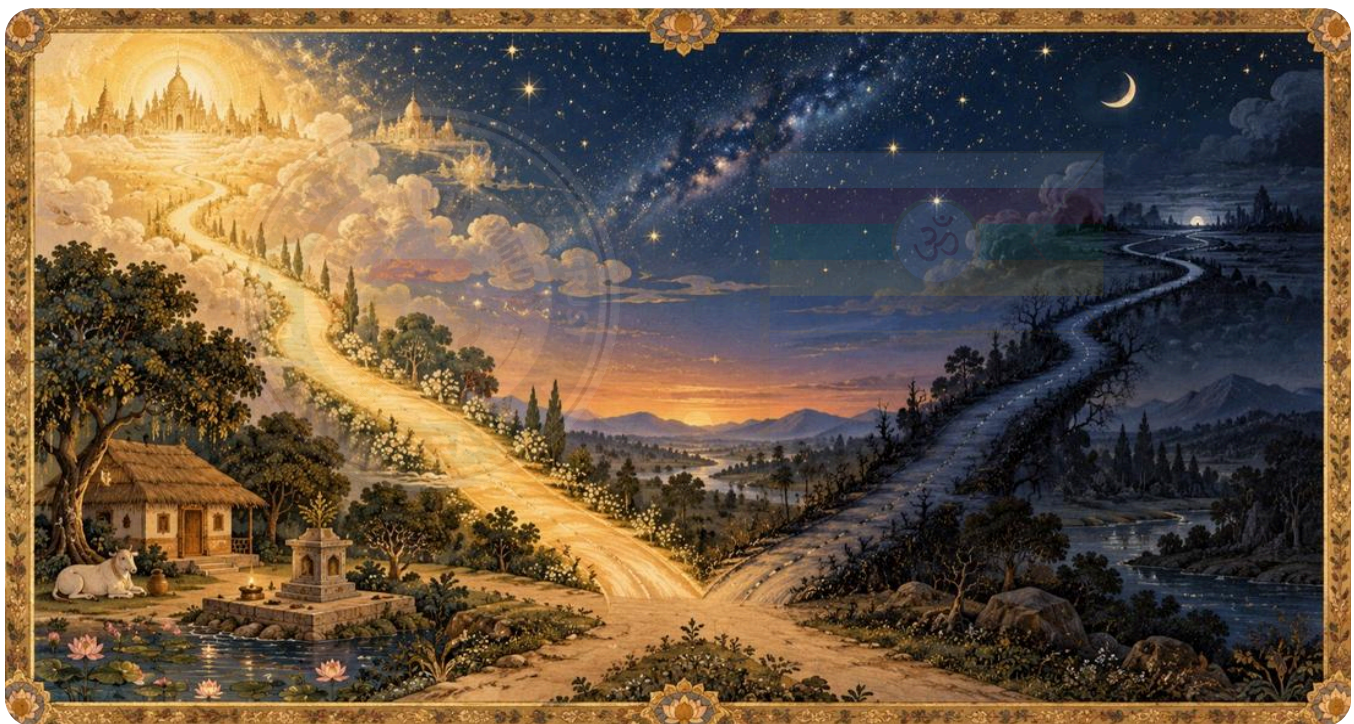
श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 32: प्रस्थान के दो मार्ग तथा भक्तियोग की श्रेष्ठता

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



इस अध्याय में वर्णित हर मार्ग वास्तव में कहीं न कहीं पहुँचता है — चन्द्रलोक, पितृलोक, अथवा स्वयं ब्रह्मलोक तक — किन्तु केवल प्रेमपूर्ण भक्ति का मार्ग ही भगवान् तक सदा के लिए पहुँचता है, बिना उन संसारों में पुनः लौटने के जोखिम के जिन्हें आत्मा पहले ही छोड़ चुकी है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। अब हम तृतीय स्कन्ध के अन्तिम-से-पूर्व अध्याय तक पहुँचते हैं — उस लम्बी, अखण्ड शिक्षा का द्वितीय-अन्तिम पड़ाव जो भगवान् कपिल सरस्वती नदी के तट पर स्थित आश्रम में अपनी माता देवहूति को दे रहे हैं। पिछला अध्याय कर्मफल में आसक्त जीव की आत्मा को वृद्धावस्था, मृत्यु तथा नरक की भयावहताओं से होकर, अन्ततः शुद्धि तथा मनुष्य-जन्म तक ले गया था। अध्याय 32 उस कष्टकारी व्यक्तिगत यात्रा से पीछे हटकर प्रस्थान का एक व्यापक मानचित्र प्रस्तुत करता है: जब कोई आत्मा, चाहे उसका स्वभाव कैसा भी हो, इस संसार को छोड़ती है, तब क्या होता है? कपिल दो मार्ग बताकर उत्तर देते हैं — “उज्ज्वल मार्ग” जिस पर वे चलते हैं जो बिना लालसा के कर्म करते हैं, तथा “अन्धकार मार्ग” जिस पर वे चलते हैं जो अच्छे तथा पुण्य कर्म करते हुए भी अनुष्ठान, परिवार तथा संसार में आसक्त रहते हैं — तथा यह बताते हैं कि प्रत्येक मार्ग वास्तव में कहाँ ले जाता है, तथा, उतना ही महत्वपूर्ण, यह भी कि कोई भी मार्ग, चाहे वह कितना भी दूर तक क्यों न जाए, एक ही विकल्प की प्रत्यक्षता से मेल नहीं खाता: स्वयं भगवान् के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति। यह अध्याय, एक वास्तविक अर्थ में, सम्पूर्ण कपिल-गीता का सैद्धान्तिक शिखर है, वह बिन्दु जहाँ कपिल काल, प्रकृति, पुरुष, जीव की संरचना तथा योग-अनुशासन के विषय में अपनी सम्पूर्ण शिक्षा को एक साथ जोड़ते हैं, तथा अपनी माता को उस निष्कर्ष तक पहुँचाते हैं जिसकी ओर यह सब कुछ अग्रसर हो रहा था: भक्तियोग ही अकेला ऐसा मार्ग है जो प्रत्यक्ष रूप से, शीघ्रता से, तथा पुनरागमन के किसी भी जोखिम के बिना भगवान् तक पहुँचता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 32 (द्वात्रिंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: “उज्ज्वल मार्ग”, “अन्धकार मार्ग” आदि द्वारा इस संसार से प्रस्थान करने वाली आत्माओं की नियति, तथा भक्तियोग की श्रेष्ठता
- मुख्य वक्ता: भगवान् कपिल, अपनी माता देवहूति को दी जा रही शिक्षा का समापन करते हुए
- मुख्य श्रोता: देवहूति, जिन्हें कई स्थानों पर सीधे “हे महान् नारी” (श्लोक 11), “हे सती नारी” (श्लोक 21), तथा “हे माता” (श्लोक 38, 43) कहकर सम्बोधित किया गया है
- मुख्य स्थान: सरस्वती नदी के तट पर ऋषि कर्दम का आश्रम (कपिल-गीता के पूर्ववर्ती अध्यायों के समान ही स्थान)
- मुख्य विषय-वस्तु: धन तथा भोग की इच्छा से यज्ञ करने वाले गृहस्थ की नियति, जो चन्द्रलोक होते हुए पुनः पृथ्वी पर लौटता है; बुद्धिमान, अनासक्त आत्मा का “उज्ज्वल मार्ग” (देवयान), जो सीधे परम पुरुष तक पहुँचता है; ब्रह्मा का ध्यान करने वालों की नियति, जो ब्रह्मा के अपने प्रलय तक सत्यलोक में निवास करते हैं; अनुष्ठान, घर तथा पितरों में आसक्त लोगों का “अन्धकार मार्ग” (पितृयान), जो पितृलोक तक पहुँचता है किन्तु पुण्य समाप्त होने पर पृथ्वी पर वापस गिर जाता है; अन्य सभी मार्गों की तुलना में भक्तियोग की श्रेष्ठता तथा शीघ्रता; ब्रह्म तथा जीव की अन्तर्निहित एकता; तथा, अन्त में, यह शिक्षा किसे दी जाए और किसे न दी जाए, इस पर कपिल का निर्देश
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 32, श्लोक 1-43
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

लौटने वाला गृहस्थ: वैराग्य-रहित अनुष्ठान

अध्याय 32 ठीक वहीं से आरम्भ होता है जहाँ से एक सतर्क पाठक कपिल से आरम्भ की अपेक्षा करेगा — न कि बुद्धिमान अथवा भक्त से, अपितु साधारण अनुष्ठानकर्ता से, उस व्यक्ति से जो गृहस्थ के विहित कर्तव्यों का सही ढंग से पालन तो करता है, किन्तु गलत कारण से:

भगवान् कपिल ने आगे कहा: जो व्यक्ति घर में रहते हुए गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करता है, तथा उनके द्वारा धन तथा इन्द्रिय-सुख अर्जित करके पुनः उन्हीं कर्मों का सहारा लेता है, वह भी, इच्छा से मोहित होकर, भगवान् से अपना मुख फेर लेता है, तथा यज्ञ-अनुष्ठानों द्वारा देवताओं तथा पितरों की श्रद्धापूर्वक उपासना करता है। (श्लोक 1-2)

यह एक सूक्ष्म तथा महत्त्वपूर्ण आरम्भिक कदम है। यह कोई दुष्ट व्यक्ति नहीं है; वह गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करता है, यज्ञ करता है, देवताओं तथा पूर्वजों का सम्मान करता है — यह सब शास्त्र की दृष्टि से पूर्णतः वैध धार्मिक कार्य है। उसकी त्रुटि अधर्म में नहीं अपितु अपूर्णता में है: वह ये कर्म “पुनः उन्हीं कर्मों का सहारा लेने” के लिए करता है, अर्थात् धन तथा इन्द्रिय-सुख ही उसका वास्तविक लक्ष्य बना रहता है, तथा देवता एवं पितर केवल उस लक्ष्य के साधन के रूप में सेवा करते हैं। कपिल इसके परिणाम को अपनी विशिष्ट सटीकता के साथ प्रस्तुत करते हैं:

उपर्युक्त प्राणियों के प्रति श्रद्धा से प्रभावित मन वाला वह व्यक्ति देवताओं तथा पितरों को प्रसन्न करने हेतु व्रत लेता है, तथा (उसके फलस्वरूप) चन्द्रलोक (स्वर्ग-लोक का एक भाग) को प्राप्त करके, वहाँ (उनके साथ) सोम-लता के (मादक) रस का पान करता है; किन्तु (जब उक्त लोक में निवास दिलाने वाला पुण्य-भण्डार समाप्त हो जाता है) तब उसे (इस मर्त्य-लोक में) लौटना ही पड़ता है। (श्लोक 3) जब (कल्प के अन्त में) अनन्त (सर्प-देवता शेष) को आसन बनाने वाले श्रीहरि शेषनाग की शय्या पर लेटते हैं, तब गृहस्थों द्वारा प्राप्त किए गए ये लोक विलीन हो जाते हैं (उनके शरीर में प्रविष्ट होकर लुप्त हो जाते हैं)। (श्लोक 4)

चन्द्रलोक वास्तविक है, उसके सुख वास्तविक हैं, तथा उसमें प्रवेश दिलाने वाला पुण्य भी वास्तविक है — किन्तु पुण्य, भक्ति के विपरीत, एक ऐसी मुद्रा है जो शून्य तक व्यय की जा सकती है। सीमित पुण्य-कर्मों से जो कुछ अर्जित किया जाता है, वह अनिवार्यतः एक सीमित निवास ही होता है। पृथ्वी पर वापसी को एक ओर रखते हुए भी, कपिल एक दूसरी, अधिक गम्भीर सीमा जोड़ते हैं: सृष्टि के प्रलय के समय, ऐसे पुण्य से प्राप्त स्वर्गीय लोक भी स्वयं भगवान् में पुनः विलीन हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, वैराग्य-रहित अनुष्ठान एक अस्थायी ब्रह्माण्ड के भीतर एक अस्थायी निवास का एक अस्थायी पट्टा खरीदता है — पार्थिव दृष्टि से यह प्रभावशाली है, फिर भी, उस पैमाने पर जिसे कपिल अब वर्णित कर रहे हैं, यह किसी भी प्रकार की स्थायिता नहीं है।



वह गृहस्थ जो धन तथा इन्द्रिय-सुख के लिए देवताओं तथा पितरों को यज्ञ अर्पित करता है, चन्द्रलोक तथा उसके सोम-रस को प्राप्त करता है, किन्तु वह पुण्य-भण्डार समाप्त होते ही उसे इस मर्त्य-लोक में लौटना पड़ता है (श्लोक 1-4)।

उज्ज्वल मार्ग: जहाँ अनासक्त कर्म ले जाता है

आसक्त अनुष्ठानकर्ता का वर्णन करने के बाद, कपिल तुरन्त उसके विपरीत की ओर मुड़ते हैं — वह बुद्धिमान व्यक्ति जो ठीक उन्हीं प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है, किन्तु बिना लालसा के, तथा दिखाते हैं कि गन्तव्य कितना भिन्न हो जाता है:

किन्तु वे बुद्धिमान लोग, जो इन्द्रिय-सुख तथा धन के लिए अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते, अपितु अपने कर्मों को मुझे अर्पित करते हैं, जो आसक्ति-रहित हैं, अत्यन्त शान्त तथा शुद्ध-मन वाले हैं, संसार से निवृत्त लोगों के कर्तव्यों में समर्पित हैं, जिनमें (शरीर तथा उससे सम्बद्ध सभी वस्तुओं के प्रति) “मैं” तथा “मेरे” की कोई भावना नहीं है, तथा जो अपने ही पवित्र कर्तव्य के नाम से प्रचलित सत्त्व (सद्गुण) के आश्रय द्वारा पूर्णतः शुद्ध किए गए मन से युक्त हैं, वे “उज्ज्वल मार्ग” द्वारा प्रकृति तथा पुरुष (जड़ तथा चेतन) दोनों के स्वामी, सर्वव्यापी परम पुरुष, अन्तिम कारण (सृष्टि के), तथा सृष्टि, पालन एवं संहार के लिए भी उत्तरदायी परम सत्ता को प्राप्त होते हैं। (श्लोक 5-7)

ध्यान दें कि कर्म का बाह्य स्वरूप आरम्भिक श्लोकों के अनुष्ठानकर्ता से बिल्कुल भिन्न होने की आवश्यकता नहीं है — जो पूर्णतः भिन्न है वह है आन्तरिक भावना: व्यक्तिगत लाभ के लिए किए गए कर्म के स्थान पर भगवान् को अर्पित कर्म, “मैं” तथा “मेरे” की भावना से मुक्ति, रजोगुण से उत्तेजित होने के स्थान पर सत्त्वगुण से शुद्ध किया गया मन। यही आन्तरिक परिवर्तन है जिस पर कपिल शेष अध्याय में यह बल देते हुए बिताएँगे कि यही वह अन्तर है जो एक चक्राकार लौटने वाले मार्ग तथा अपने गन्तव्य तक पहुँचने वाले मार्ग के बीच सम्पूर्ण भेद उत्पन्न करता है। व्यापक वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में परम्परागत रूप से देवयान कहा जाने वाला “उज्ज्वल मार्ग” यहाँ केवल किसी एक स्वर्गीय लोक तक ही नहीं, अपितु सीधे “सर्वव्यापी परम पुरुष” तक — सृष्टि के अन्तिम कारण स्वयं तक, न कि उसके किसी प्रशासक तक — ले जाने वाला बताया गया है।

कपिल तब अनासक्त लोगों में एक और स्तर का वर्णन करते हैं — वे जिनका ध्यान परम पुरुष तक न पहुँचकर, ब्रह्मा, सृष्टि के वास्तुकार, पर टिक जाता है:

जो लोग हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) का ध्यान परम सत्ता से अभिन्न मानकर करते हैं, वे ब्रह्मा के प्रलय तक, जो दो परार्थों के अन्त में होता है, ब्रह्मलोक (सत्यलोक नामक सर्वोच्च स्वर्ग) में निवास करते हैं। (श्लोक 8)

यह भी — सत्यलोक में, सभी स्वर्गीय लोकों में सर्वोच्च, इतनी विशाल अवधि तक निवास, जिसे परार्थों में मापा जाता है (एक ऐसी कालमापन-इकाई जिसे साधारण कल्पना पकड़ पाना लगभग असम्भव है) — अन्तिम नहीं है। सत्यलोक का भी अन्त होता है, जो ब्रह्मा के स्वयं के प्रलय के साथ मेल खाता है।



जो बुद्धिमान लोग आसक्ति-रहित होकर, सत्त्व से शुद्ध मन के साथ अपने कर्तव्य भगवान् को अर्पित करते हैं, वे "उज्ज्वल मार्ग" द्वारा सर्वव्यापी परम पुरुष को स्वयं प्राप्त होते हैं, जो सृष्टि, पालन तथा संहार के अन्तिम कारण हैं (श्लोक 5-7)।

ब्रह्मलोक की लम्बी सन्ध्या, और मुक्त ऋषि भी क्यों लौट सकते हैं

अध्याय का अगला भाग इसके सबसे दार्शनिक रूप से जटिल भागों में से एक है, तथा यह एक ऐसे प्रश्न को सम्बोधित करता है जो किसी भी सतर्क श्रोता के मन में स्वाभाविक रूप से उठेगा: यदि ब्रह्मलोक भी दो परार्थों के अन्त में ब्रह्मा के साथ प्रलय को प्राप्त होता है, तो वहाँ निवास करने वाले महान् ऋषियों तथा योगियों का क्या होता है?

सृष्टि को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, इन्द्रियों तथा उनके विषयों एवं अहंकार (तत्त्वों के स्रोत) आदि से संयुक्त रूप में विलीन करने की इच्छा से, तथा दो परार्थों तक विस्तृत अपना कार्यकाल पूर्ण करके, जब ब्रह्मा (स्वयंभू), जो अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं, स्वयं को प्रकृति (तीनों गुणों से युक्त) के साथ तादात्म्य कर परब्रह्म में प्रवेश करते हैं, तब जिन योगियों ने अपने प्राण तथा मन को नियन्त्रित किया है तथा जो आसक्ति-रहित हैं, वे अपने शरीर को त्यागकर पूज्य ब्रह्मा में (के शरीर में) प्रवेश करते हैं, तथा उनके साथ ही परम आनन्द-स्वरूप, अनादि पुरुष से अभिन्न परब्रह्म में विलीन हो जाते हैं, जिसे वे पहले प्राप्त नहीं कर सके थे क्योंकि तब तक उनका अहंकार पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ था। (श्लोक 9-10)

यह, सतही रूप में, मुक्ति का ही वर्णन है — परम आनन्द-स्वरूप परब्रह्म के साथ एकत्व। और फिर भी, अध्याय के सबसे चौंकाने वाले तथा प्रायः अनदेखे मोड़ों में से एक में, कपिल तुरन्त यह स्पष्ट करते हैं कि यह मिलन भी कितना अस्थायी हो सकता है:

दूसरी ओर, स्वयं ब्रह्मा (वेदों के आगार तथा) चराचर सृष्टि के कारण, मरीचि आदि ऋषियों, सनक आदि योग के स्वामियों, तथा योग के प्रथम आचार्य अन्य सिद्धों सहित — अन्तिम प्रलय के समय, अपने निष्काम कर्म के बल पर, आदि पुरुष, समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ, जो तीनों गुणों के अधिष्ठाता ब्रह्मा से अभिन्न हैं, (के शरीर) में प्रवेश करने के पश्चात् भी — सृष्टि के समय (यदि भगवान् ऐसा चाहें) पुनः पहले की भाँति जन्म लेता है — जब काल-पुरुष द्वारा, जो स्वयं भगवान् की ही एक अभिव्यक्ति है, गुणों का सन्तुलन भंग किया जाता है — भेद-बुद्धि तथा कर्तृत्व-भाव को बनाए रखने के कारण। (श्लोक 12-14) तथा ऋषिगण भी — अपने पुण्य-कर्मों से अर्जित सर्वोच्च स्वर्ग के गौरवशाली जीवन का भोग करने के पश्चात् — (सृष्टि के समय) गुणों का सन्तुलन भंग होने पर (ब्रह्मा के मानस-पुत्रों के रूप में भगवान् की इच्छा से) उसी प्रकार लौट आते हैं। (श्लोक 15)

स्वयं ब्रह्मा, तथा सनक एवं मरीचि जैसे महान् आदि ऋषि — वे भी, जो निष्काम, पुण्यमय आध्यात्मिक साधना की चरम सीमा पर खड़े हैं — नई सृष्टि के आरम्भ होने पर पुनः जन्म लेते हैं, क्योंकि “भेद-बुद्धि” तथा “कर्तृत्व-भाव” उन्हें अभी तक पूर्णतः नहीं छोड़ पाए थे। आगे बढ़ने से पहले इस बिन्दु पर रुकना उपयुक्त है, क्योंकि यह चुपचाप कपिल द्वारा वर्णित मार्गों के सम्पूर्ण पदानुक्रम को नए सिरे से परिभाषित करता है: यह कोई ऐसी सीढ़ी नहीं है जिस पर जितना ऊँचा चढ़ें उतनी ही अधिक स्थायी सुरक्षा मिले, अपितु यह भिन्न-भिन्न गन्तव्यों का एक समूह है, जिनमें से केवल एक ही वास्तव में ब्रह्माण्डीय चक्र की पहुँच से पूर्णतः परे है।

यही वह सैद्धान्तिक कीलक है जिस पर सम्पूर्ण अध्याय टिका है। अब तक वर्णित हर मार्ग — अनुष्ठान, ध्यान, यहाँ तक कि आदि पुरुष तक पहुँचाने वाला निष्काम कर्म भी — अपने भीतर उपासक की अपनी उपलब्धि के भाव का कोई न कोई सूक्ष्म अंश, एक अत्यन्त सूक्ष्म “मैंने यह प्राप्त कर लिया” का भाव, लिए रहता है। भक्तियोग अकेला इसके विपरीत ढंग से कार्य करता है: यह आत्मा से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह अपने ही प्रयास से भगवान् की ओर चढ़े तथा तब, शिखर पर पहुँचकर, अन्ततः अहंकार का त्याग करे; यह आरम्भ से ही आत्मा को उनके साथ सम्बन्ध में — सेवक तथा स्वामी के रूप में — स्थापित कर देता है, जिससे अहंकार भक्ति की पूर्वशर्त के रूप में नहीं, अपितु प्रेम के स्वाभाविक उपफल के रूप में विलीन हो जाता है। यही ठीक-ठीक कारण है कि कपिल कुछ ही श्लोकों के भीतर यह वचन दे पाते हैं कि उनके चरणों में मात्र भक्तिपूर्ण शरण वह प्राप्त कर देती है, तुरन्त, जो निष्काम साधना परार्थों के ब्रह्माण्डीय काल के पश्चात् ही प्राप्त कर पाती है (श्लोक 11, 22-23)।

इन दोनों गूढ़ आध्यात्मिक अंशों के मध्य, कपिल सीधे अपनी माता की ओर मुड़कर अध्याय की पहली स्पष्ट व्यक्तिगत सलाह देते हैं:

अतः, हे महान् नारी, उस भगवान् में ही भक्तिपूर्वक शरण लो, जिन्होंने समस्त प्राणियों के कमल-सदृश हृदय में अपना निवास बनाया है, तथा जिनकी महिमा तुमने (अभी-अभी मुझसे) सुनी है। (श्लोक 11)

इस श्लोक का स्थान संयोगवश नहीं है — यहाँ तक की सर्वोच्च निर्गुण अथवा पुण्यमय मार्गों की सीमाओं से सम्बन्धित दो सघन अंशों के बीच रखा जाकर, यह कपिल के अपने ही शान्त सिद्धान्त-वाक्य का कार्य करता है, जो यहाँ एक बार कहा जाता है तथा फिर शेष अध्याय में विस्तार से सिद्ध किया जाता है।

अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयाम् ।

श्रुतानुभावं शरणं ब्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥

atha taṁ sarva-bhūtānāṁ hṛt-padmeṣu kṛtālayam śrutānubhāvaṁ śaraṇaṁ vraja bhāvena bhāmini

अर्थ: कपिल अब सीधे अपनी माता की ओर मुड़ते हैं: वे उसी भगवान् की शरण भावपूर्वक ग्रहण करें, जिन्होंने समस्त प्राणियों के हृदय-कमल में अपना निवास बनाया है, तथा जिनकी महिमा वे अभी सुन चुकी हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 32, श्लोक 11)



श्वास तथा मन को वश में करने वाले योगीजन सृष्टि के प्रलय के समय ब्रह्मा में विलीन होते हैं, तथा ब्रह्मा भी परमात्मा में विलीन होते हैं — किन्तु सनक तथा मरीचि जैसे महान् ऋषि भी अगली सृष्टि में पुनः जन्म लेते हैं, क्योंकि अहंकार तथा कर्तृत्व-भाव का सूक्ष्मतम अंश अभी तक उनसे पूर्णतः दूर नहीं हुआ था (श्लोक 9-15)।

अन्धकार मार्ग: अनुष्ठान, पितर, तथा पृथ्वी पर वापसी

आसक्ति-रहित लोगों के लिए उपलब्ध दोनों गन्तव्यों (सीधे परम पुरुष, या ब्रह्मलोक का लम्बा किन्तु फिर भी अस्थायी निवास) का वर्णन करने के बाद, कपिल अब उस आत्मा की ओर लौटते हैं जो अभी भी इच्छा तथा सांसारिक आसक्ति से बँधी हुई है — “अन्धकार मार्ग,” अथवा पितृयान — तथा इसका अधिक विस्तार से वर्णन करते हैं:

किन्तु जिनका मन संसार में आसक्त है, तथा जो धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् हैं, वे उन कर्मों को, जो शास्त्रों द्वारा निषिद्ध नहीं हैं, तथा जो अनिवार्य प्रकृति के हैं, सम्पूर्णतः इच्छा से प्रेरित होकर करते हैं। (श्लोक 16) रजोगुण से आच्छादित बुद्धि, इच्छाओं से भरा मन, तथा अनियन्त्रित इन्द्रियों के साथ, वे प्रतिदिन पितरों की उपासना करते हैं, तथा उनका हृदय केवल घर में ही आनन्द पाता है। (श्लोक 17)

कपिल इन लोगों को अधार्मिक कहकर निन्दित नहीं करते; उनके कर्म स्पष्ट रूप से “शास्त्रों द्वारा निषिद्ध नहीं हैं।” उनकी त्रुटि, एक बार पुनः, कर्म के स्वरूप में नहीं अपितु उसकी प्रेरणा तथा उसकी सीमा में है — एक ऐसा हृदय जो “केवल घर में ही आनन्द पाता है,” न कि उस भगवान् में जिनकी कथाओं से, कपिल तुरन्त जोड़ते हैं, वे विमुख हो चुके हैं:

धर्म, अर्थ तथा काम — इन प्रथम तीन पुरुषार्थों में ही समर्पित, ये लोग श्रीहरि (मधु-दैत्य के संहारक) की कथाओं से विमुख रहते हैं, जिनका ज्ञान जन्म-मृत्यु के भय को दूर करता है तथा जिनके अगणित पराक्रम वर्णन के योग्य हैं। (श्लोक 18) अमृत-सदृश अमर भगवान् की कथाओं को त्यागकर, जो लोग निन्दनीय (कामुक भोग से सम्बन्धित) वार्तालाप सुनते हैं — जैसे शूकर मल का सेवन करते हैं — वे निश्चय ही भाग्य द्वारा ठगे गए हैं। (श्लोक 19)

शूकर की उपमा जान-बूझकर कठोर है, तथा इसे सहजता से पढ़ना ही उचित है, इससे विचलित हुए बिना: बिन्दु यह नहीं है कि सामान्य सांसारिक वार्तालाप किसी शाब्दिक अर्थ में गन्दा है, अपितु यह है कि एक मन, जो “अमर भगवान् की अमृत-सदृश कथाओं” का स्वाद ले सकता है, तथा इसके स्थान पर निम्न वार्तालाप का सेवन करना चुनता है, वह अत्यन्त सटीक अर्थ में ठगा गया है — अपनी ही भ्रमित रुचि द्वारा एक उपलब्ध तथा श्रेष्ठ पोषण से वंचित किया गया है। यह आसक्ति जिस गन्तव्य की ओर ले जाती है, वह स्पष्ट रूप से बताया गया है:

गर्भाधान के संस्कार से लेकर अन्येष्टि तक धार्मिक अनुष्ठान करते हुए, वे अर्यमा (पितरों के स्वामी) के अधिष्ठाता पितृलोक तक दक्षिण मार्ग (जिसे “अन्धकार मार्ग” भी कहा जाता है) से पहुँचते हैं, तथा (अन्ततः) अपनी ही सन्तान-परम्परा में जन्म लेते हैं। (श्लोक 20) इसके पश्चात्, जब उनका पुण्य (जिसने उन्हें पितृलोक में निवास दिलाया था) समाप्त हो जाता है, तब उस लोक के अधिकारी देवताओं द्वारा उनकी गौरवशाली स्थिति तुरन्त छीन ली जाती है, तथा वे असहाय होकर पुनः इस (मर्त्य) संसार में गिर जाते हैं, हे सती नारी। (श्लोक 21)

यहाँ की संरचना अध्याय के आरम्भिक श्लोकों के अनुष्ठानकर्ता की नियति को ठीक-ठीक प्रतिबिम्बित करती है, तथा यह पुनरावृत्ति स्वयं तर्क है: चाहे पुरस्कार चन्द्रलोक हो अथवा पितृलोक, चाहे मार्ग को केवल “आसक्त अनुष्ठान” कहा जाए अथवा उसे अधिक औपचारिक नाम “अन्धकार मार्ग” दिया जाए, अन्तर्निहित तन्त्र समान ही है — पुण्य अर्जित किया जाता है, पुण्य व्यय किया जाता है, तथा जब वह समाप्त हो जाता है, गुरुत्वाकर्षण पुनः अपना प्रभाव दिखाता है तथा आत्मा ठीक उसी संसार में वापस गिर जाती है जिससे उसने आरम्भ किया था। यह सम्पूर्ण संरचना — दो स्पष्ट रूप से नामित मार्ग, एक उज्ज्वल तथा एक अन्धकारमय, प्रत्येक एक वास्तविक किन्तु सीमित गन्तव्य की ओर ले जाता हुआ — वही है जो अध्याय को उसकी संरचना प्रदान करती है, तथा जो उस विकल्प के बल को स्थापित करती है जिसे कपिल अब प्रस्तुत करने वाले हैं।



जिनके हृदय केवल घर तथा अनुष्ठान में ही रमते हैं, तथा जो भगवान् की कथाओं से मुख फेर लेते हैं, वे दक्षिणी “अन्धकार मार्ग” से पितरों के लोक तक पहुँचते हैं — किन्तु वह पुण्य भी समाप्त होते ही उन्हें पुनः इस मर्त्य-लोक में गिरा दिया जाता है (श्लोक 16-21)।

सीधा मार्ग: भक्तियोग की श्रेष्ठता

यह ठीक उसी बिन्दु पर है — जब यह दिखा दिया गया है कि उज्ज्वल मार्ग (ब्रह्मलोक) तथा अन्धकार मार्ग (पितृलोक) द्वारा उपलब्ध श्रेष्ठतम परिणाम भी, अपने-अपने भिन्न ढंग से, सीमित ही रह जाते हैं — कि कपिल अध्याय की केन्द्रीय शिक्षा देते हैं:

अतः, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व से उस परम भगवान् की उपासना करो — जिनके कमल-सदृश चरण पूजनीय हैं — उनके गुणों से जागृत भक्ति के द्वारा। (श्लोक 22) भगवान् वासुदेव के साथ भक्ति द्वारा स्थापित सम्बन्ध शीघ्र ही वैराग्य तथा वह आध्यात्मिक ज्ञान उत्पन्न कर देता है जो परम सत्ता के सत्य को प्रकट करता है। (श्लोक 23)

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥

vāsudeve bhagavati bhakti-yogaḥ prayojitaḥ janayaty āśu vairāgyaṁ jñānaṁ yad brahma-darśanam

अर्थ: भगवान् वासुदेव के प्रति भक्ति का यह सम्बन्ध बनते ही, यह सम्बन्ध स्वयं शीघ्र ही वैराग्य को तथा ब्रह्म के सत्य को प्रकट करने वाले ज्ञान को उत्पन्न कर देता है। (स्कन्ध 3, अध्याय 32, श्लोक 23)

यह सम्पूर्ण कपिल-गीता में सबसे शान्त किन्तु सबसे क्रान्तिकारी दावों में से एक है, तथा यह स्पष्ट रूप से कहना उचित है कि यह वास्तव में क्या दावा करता है: भक्तियोग केवल ज्ञान-योग (आध्यात्मिक ज्ञान) तथा वैराग्य-युक्त वैदिक अनुष्ठान के साथ, समान रूप से धीमे कई विकल्पों में से एक वैध मार्ग के रूप में खड़ा नहीं होता। यह स्वयं ही वैराग्य तथा ज्ञान को अपने स्वाभाविक उपफल के रूप में, “शीघ्र ही” उत्पन्न करता है — अर्थात् जिन फलों के लिए ज्ञान तथा वैराग्य-युक्त अनुष्ठान के मार्ग परार्थी तक फैले ब्रह्माण्डीय काल में परिश्रम करते हैं, भक्ति उन्हें स्वाभाविक रूप से तथा शीघ्रता से, केवल भगवान् के साथ एक जीवन्त सम्बन्ध स्थापित करने मात्र से, उत्पन्न कर देती है। कपिल तब अधिक सूक्ष्म दार्शनिक शब्दों में यह बताते हैं कि यह वैराग्य तथा ज्ञान, आने पर, कैसा दिखता है:

जब भक्त का मन इन्द्रिय-अनुभव के माध्यम से भी, इन्द्रिय-विषयों में, जो समान ही हैं (चूँकि वे एक ही सत्ता, अर्थात् ब्रह्म, की अभिव्यक्तियाँ हैं), किसी भी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के रूप में भेद का अनुभव करना बन्द कर देता है, तब वह तुरन्त अपनी बुद्धि द्वारा अपने ही स्वरूप को एकत्व के प्रकाशक, आसक्ति-रहित, पुण्य तथा पाप (जो ग्रहण अथवा त्याग योग्य है) से रहित, तथा अपनी ही (गौरवशाली) स्थिति में प्रतिष्ठित रूप में साक्षात् करता है। (श्लोक 24–25) भगवान् केवल शुद्ध चैतन्य ही हैं, तथा वे परम सत्ता (ब्रह्म), परमात्मा, सबके शासक, तथा सर्वोच्च पुरुष के समान ही हैं। यद्यपि वे एक हैं, वे द्रष्टा, दृश्य वस्तु, दर्शन का साधन आदि विविध रूपों में प्रकट होते हैं। (श्लोक 26) सबसे आसक्ति का अभाव — यही वह एकमात्र वांछित लक्ष्य है जिसे किसी योगी द्वारा अभ्यास किए जाने वाले योग के सभी रूपों द्वारा प्राप्त किया जाना है। (श्लोक 27)

कपिल फिर इस अन्तर्दृष्टि को कपिल-गीता में पूरे समय सिखाए गए तत्त्वज्ञान में — ब्रह्म, जीव, तथा दोनों के मध्य सम्बन्ध — कई श्लोकों में आधारित करते हैं:

ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है, एक तथा निर्गुण; फिर भी, बाह्यमुखी प्रवृत्ति वाली इन्द्रियों के माध्यम से, यह त्रुटिपूर्वक शब्द तथा अन्य गुणों से युक्त विभिन्न वस्तुओं के रूप में प्रकट होता है। (श्लोक 28) जिस प्रकार वही परम ब्रह्म महत्तत्त्व (ब्रह्माण्डीय बुद्धि का सिद्धान्त), त्रिविध (सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक) अहंकार, पाँच स्थूल तत्त्वों तथा ग्यारह इन्द्रियों के रूप में प्रकट हुआ, तथा वही स्वयंप्रकाश सत्ता, इनसे युक्त होकर, जीव कहलाई, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के रूप में जीव का शरीर भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है; क्योंकि यह ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है। (श्लोक 29) निश्चय ही, इसे उसी रूप में केवल वही व्यक्ति देख पाता है, जिसका मन श्रद्धा, भक्ति, नित्य योगाभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा शान्त तथा समस्त आसक्ति से मुक्त हो चुका है। (श्लोक 30)

इस शिखर तक पहुँचकर, कपिल एक बार पुनः देवहूति की ओर मुड़ते हैं, तथा, एक ऐसे क्षण में जो अनेक अध्यायों पूर्व आरम्भ हुए दार्शनिक चक्र को पूर्ण करता है, स्पष्ट रूप से उन्हें बताते हैं कि यह शिक्षा अब पूर्ण हो चुकी है:

हे पूज्य माता, मैंने तुम्हें इस प्रकार वह ज्ञान बताया है जो परम सत्ता के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, तथा जिसके द्वारा प्रकृति (जड़ पदार्थ) तथा पुरुष (चेतन) के सत्य को साक्षात् किया जा सकता है। (श्लोक 31) ज्ञान का अनुशासन तथा भक्ति का अनुशासन — जो तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त है — दोनों ही, जब मेरी ओर निर्दिष्ट हों, एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं, जिसे “भगवान्” शब्द द्वारा सूचित किया जाता है। (श्लोक 32)

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ।

द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥ ३२ ॥

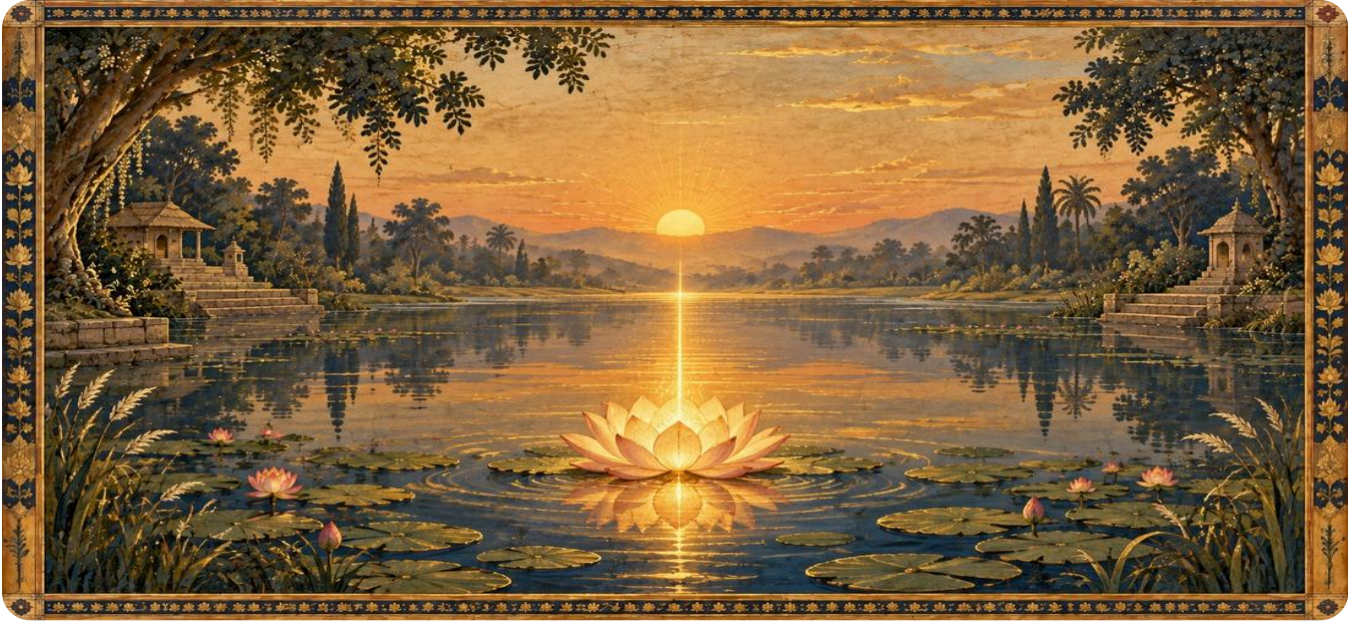
jñāna-yogaś ca man-niṣṭho nairguṇyo bhakti-lakṣaṇaḥ dvayor apy eka evārtho bhagavac-chabda-lakṣaṇaḥ

अर्थ: मुझ पर स्थिर ज्ञान का मार्ग तथा तीनों गुणों से रहित भक्ति का मार्ग दो पृथक् गन्तव्य नहीं हैं — दोनों ही उसी एक सत्ता की ओर संकेत करते हैं जिसे “भगवान्” शब्द सूचित करता है। (स्कन्ध 3, अध्याय 32, श्लोक 32)

यह एकल श्लोक अध्याय का दार्शनिक मूलाधार है: ज्ञान तथा शुद्ध, निर्गुण भक्ति दो प्रतिस्पर्धी प्रणालियाँ नहीं हैं जो दो भिन्न पुरस्कारों तक पहुँचती हों, अपितु दो मार्ग हैं जो एक ही गन्तव्य — स्वयं भगवान्, जिन्हें “भगवान्” शब्द से सूचित किया जाता है — पर मिल जाते हैं। कपिल तुरन्त इस दावे को और भी विस्तृत करते हैं, शास्त्रीय बहुलता के एक चौंकाने वाले वक्तव्य में, जो पूर्णतः उस एक सत्ता की प्रकृति पर आधारित है जिसकी खोज की जा रही है:

जिस प्रकार अनेक गुणों (जैसे वर्ण, स्वाद आदि) से युक्त एक ही पदार्थ इन्द्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न मार्गों से भिन्न-भिन्न रूप में अनुभव किया जाता है, उसी प्रकार भगवान्, यद्यपि एक हैं, शास्त्रों द्वारा बताए गए विभिन्न मार्गों से विभिन्न रूप में साक्षात् किए जाते हैं। (श्लोक 33) सार्वजनिक हित के कार्यों (जैसे कुओं तथा तालाबों की खुदाई, सड़कों का निर्माण आदि) तथा यज्ञों, दान तथा तपस्या, वेदों के अध्ययन तथा उनके अर्थ की खोज के द्वारा, यहाँ तक कि मन तथा इन्द्रियों के नियन्त्रण (अर्थात् निषिद्ध कर्मों से विरत रहने) के द्वारा तथा कर्म-संन्यास के द्वारा भी, यम-नियम आदि विभिन्न अंगों वाले योग के द्वारा तथा इसी प्रकार भक्ति के अनुशासन के द्वारा, द्विविध धर्म द्वारा, अर्थात् जो सांसारिक क्रिया से युक्त है तथा जो संन्यास द्वारा चिह्नित है, तथा पुनः आत्मा के वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार तथा वैराग्य के द्वारा भी, हम उसी स्वयंप्रकाश भगवान् को प्राप्त करते हैं, जो सगुण भी हैं तथा निर्गुण भी। (श्लोक 34–36)

ध्यान देने योग्य है कि इस सूची में क्या-क्या सम्मिलित है: केवल ध्यान तथा संन्यास ही नहीं, अपितु स्पष्टतः नागरिक सेवा भी — कुओं खुदवाना, तालाब बनवाना, दूसरों के उपयोग हेतु सड़क बिछवाना — सेवा का एक लगभग चौंका देने वाला व्यावहारिक, सांसारिक स्वरूप, जो कठोर तपस्या तथा वैदिक अध्ययन के समान ही स्तर पर रखा गया है, बशर्ते वह भी अन्ततः उसी स्वयंप्रकाश भगवान् की ओर निर्दिष्ट हो। इस श्लोक में भगवान् तक पहुँचने के मार्गों के विषय में कपिल की दृष्टि संकीर्ण नहीं अपितु उदार है — यह भक्तियोग की शीघ्रता तथा प्रत्यक्षता है जिसे अध्याय ने विशेष प्रशंसा के लिए चुना है, यह कोई विशिष्ट दावा नहीं है कि हर दूसरा मार्ग निरर्थक है।



"भगवान् वासुदेव के प्रति भक्ति से बना सम्बन्ध शीघ्र ही वैराग्य तथा वह आध्यात्मिक ज्ञान उत्पन्न करता है जो परमात्मा के सत्य को प्रकट करता है" — भक्तियोग की शीघ्रता तथा श्रेष्ठता पर अध्याय की केन्द्रीय शिक्षा (श्लोक 23)।

यह शिक्षा किसे दी जाए

अध्याय एक ऐसे भाग के साथ समाप्त होता है जो कपिल-गीता में अब तक की किसी भी अन्य वस्तु से भिन्न है — कपिल सिद्धान्त से पूर्णतः पीछे हटकर, अत्यन्त व्यावहारिक रूप से, प्रसारण के प्रश्न को सम्बोधित करते हैं: इस शिक्षा को प्राप्त करने योग्य कौन है, और कौन नहीं?

मैं तुम्हें भक्तियोग (भक्ति के अनुशासन) की चतुर्विध प्रकृति (अनुसार जिस पर तीनों गुणों में से कोई एक हावी हो अथवा जो उनके प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो) तथा काल (काल-पुरुष) की प्रकृति भी पहले ही बता चुका हूँ, जिसकी गति (इन्द्रियों द्वारा) अनुभव नहीं की जा सकती, तथा जो प्राणियों के जन्म-मृत्यु आदि को उत्पन्न करता है। (श्लोक 37) मैंने जीव की उन विभिन्न अस्तित्व-अवस्थाओं का भी वर्णन किया है — जो उसके अविद्या-प्रेरित कर्मों से उत्पन्न होती हैं — जिनसे गुजरते हुए, हे माता, आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाती है। (श्लोक 38)

यह कपिल का अपना सारांश है, कपिल-गीता के इस भाग में जो कुछ भी कवर किया गया है उसका — चतुर्विध भक्तियोग, अगोचर काल-पुरुष, तथा अविद्या के अधीन जीव की विस्मृति — जो यहाँ प्रवचन के अन्तिम शब्द से पहले लगभग एक विषय-सूची के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद इस शिक्षा के प्रसारण पर एक स्पष्ट, असंदिग्ध प्रतिबन्ध आता है:

इस मेरे उपदेश को किसी दुष्ट व्यक्ति (जो दूसरों को कष्ट पहुँचाने का स्रोत हो) को कभी नहीं सिखाना चाहिए, न ही उसे जिसमें नम्रता का अभाव है, न ही किसी अहंकारी व्यक्ति को, तथा न ही किसी चरित्रहीन व्यक्ति को, और किसी भी स्थिति में किसी पाखण्डी व्यक्ति को नहीं। (श्लोक 39) न ही इसे किसी सुख-लालसी व्यक्ति को देना चाहिए, न ही उसे जो अपने घर में आसक्त है, न ही उसे जो मेरा भक्त नहीं है, न ही उन्हें जो मेरे भक्तों से द्वेष रखते हैं। (श्लोक 40)

और फिर, इसका सकारात्मक प्रतिबिम्ब:

इसे निश्चय ही किसी श्रद्धावान् व्यक्ति को, किसी भक्त को, किसी विनम्र आत्मा को, किसी अछिद्रान्वेषी व्यक्ति को, प्राणियों के प्रति मित्रवत् किसी व्यक्ति को, तथा (इसी प्रकार) सेवा में आनन्द लेने वाले किसी व्यक्ति को, बाह्य वस्तुओं के प्रति विरक्ति विकसित कर चुके किसी व्यक्ति को, शान्त-मन वाले किसी व्यक्ति को, ईर्ष्या-रहित किसी व्यक्ति को, भीतर तथा बाहर दोनों से शुद्ध किसी व्यक्ति को, तथा सबसे

बढ़कर उस व्यक्ति को दिया जा सकता है जो मुझे सबसे अधिक प्रिय मानता है। (श्लोक 41-42)

यह समापन-निर्देश अध्याय के तर्क से असम्बद्ध नहीं है — यह वास्तव में, पहले कही गई प्रत्येक बात के साथ पूर्णतः सुसंगत है। एक ऐसी शिक्षा जो सरल, प्रत्यक्ष भक्ति के माध्यम से परार्थों के ब्रह्माण्डीय चक्र को छोटा करने का वचन देती है, ठीक अपनी शक्ति के कारण, उस मन के लिए उपयुक्त नहीं है जो अभी भी उन्हीं आसक्तियों — घर, सुख, अहंकार — से शासित है, जिन्हें विलीन करने के लिए यह शिक्षा अस्तित्व में है। कपिल का अन्तिम श्लोक तब अध्याय का, तथा इस सम्पूर्ण भाग का, समापन-वचन प्रस्तुत करता है:

हे माता, जो व्यक्ति अपना मन मुझ पर स्थिर करके श्रद्धापूर्वक इस (मेरे) प्रवचन को एक बार भी सुनता अथवा दोहराता है, वह निश्चय ही मेरी स्थिति को प्राप्त करता है। (श्लोक 43)

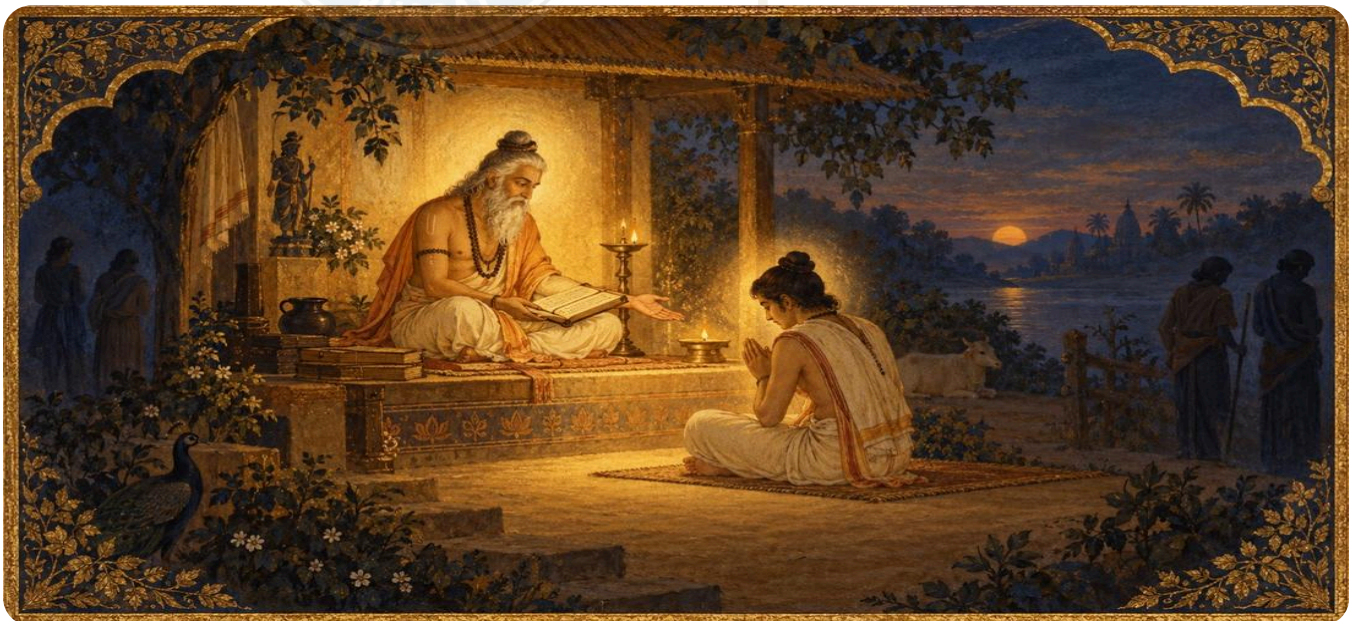
य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ।

यो वाभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥

ya idam śṛṇuyād amba śraddhayā puruṣaḥ sakṛt yo vābhidhatte mac-cittaḥ sa hy eti padaviṁ ca me

अर्थ: हे माता, जो कोई श्रद्धापूर्वक इस शिक्षा को एक बार भी सुनता है, अथवा मुझ पर मन स्थिर करके इसे दोहराता है, वह निश्चय ही उसी स्थिति को प्राप्त करता है जिसमें मैं स्वयं स्थित हूँ। (स्कन्ध 3, अध्याय 32, श्लोक 43)

अध्याय का पुष्पिका-वाक्य इस प्रवचन को सरलता से समाप्त करता है: “इस प्रकार ‘भगवान् कपिल की कथा’ का यह द्वात्रिंश प्रवचन, महान् एवं गौरवशाली भागवत-पुराण के तृतीय स्कन्ध में समाप्त होता है, जिसे परमहंस-संहिता के नाम से भी जाना जाता है।”



कपिल अपनी माता को यह निर्देश देते हैं कि यह शिक्षा किसे दी जाए — श्रद्धावान्, विनम्र, भक्त, ईर्ष्या-रहित तथा भीतर-बाहर से शुद्ध व्यक्ति को — तथा अपनी अन्तिम प्रतिज्ञा के साथ समापन करते हैं: जो कोई भी मन को भगवान् में स्थिर करके इस प्रवचन को श्रद्धापूर्वक एक बार भी सुने अथवा दोहराए, वह निश्चय ही उनकी अवस्था को प्राप्त करेगा (श्लोक 39-43)।

चिन्तन: एक गन्तव्य, अनेक मार्ग, एक सीधा पथ

अध्याय 32 सम्पूर्ण कपिल-गीता की, संसार से आत्मा के प्रस्थान सम्बन्धी शिक्षा का महान् मानचित्रीय अवलोकन प्रस्तुत करता है, तथा यह वह कार्य करता है जो बहुत कम अध्याय कर पाते हैं: यह वास्तविक बौद्धिक उदारता को — यह स्वीकार करते हुए कि उज्ज्वल मार्ग, अन्धकार मार्ग, वैदिक अनुष्ठान, सार्वजनिक कार्य, योग, तथा ज्ञान का मार्ग — सभी वास्तव में कहीं न कहीं ले जाते हैं, सभी अन्ततः उसी एक सत्ता से जुड़ते हैं — तथा इस स्पष्ट-दृष्टि, अनुदार-रहित निर्णय के साथ जोड़ता है कि इनमें से कौन-सा मार्ग सबसे शीघ्र, सबसे सुरक्षित तथा सबसे प्रत्यक्ष है। अन्धकार मार्ग अपना पुण्य समाप्त होते ही पृथ्वी पर वापस लौट आता है। उज्ज्वल मार्ग का सर्वश्रेष्ठ गन्तव्य, ब्रह्मलोक भी, ब्रह्मा के प्रलय से सीमित रहता है, तथा वहाँ तक पहुँचने वाले मुक्त ऋषि भी, यदि अहंकार का सूक्ष्मतम अंश शेष रहे, तो पुनः जन्म ले सकते हैं। केवल भक्तियोग — “भगवान् वासुदेव के साथ भक्ति द्वारा स्थापित सम्बन्ध” — ही वह है जो शीघ्रता से तथा स्वाभाविक रूप से, ठीक उसी वैराग्य तथा ज्ञान को उत्पन्न करता है जिनका पीछा हर दूसरा मार्ग अगणनीय अनुशासित प्रयास के काल-विस्तार में करता है। यही कारण है कि, अन्ततः, अध्याय ब्रह्माण्ड-विज्ञान से नहीं अपितु चरित्र के प्रश्न से समाप्त होता है: यह किसे सिखाया जाए? अहंकारी, पाखण्डी अथवा घर में आसक्त व्यक्ति को नहीं, अपितु श्रद्धावान्, विनम्र, भक्त को — क्योंकि कपिल जिस शॉर्टकट का वर्णन कर रहे हैं, वह किसी अयोग्य व्यक्ति द्वारा शोषण किए जाने वाला कोई छिद्र नहीं है, अपितु एक ऐसा उपहार है जिसे केवल वह हृदय ही सचमुच ग्रहण कर पाता है जो पहले से ही भगवान् की ओर उन्मुख हो। देवहूति ने पथों तथा गन्तव्यों की इस सम्पूर्ण, मांगपूर्ण संरचना को अपने ही पुत्र से सुना है; उनके — तथा तब से हर श्रोता के — पास कपिल का सबसे सरल तथा अन्तिम वचन शेष रह जाता है: मन को उन पर स्थिर करके, एक बार का श्रद्धापूर्ण श्रवण ही पर्याप्त है।

सन्दर्भ

- मूल स्रोत: श्रीमद्भागवत महापुराण (भागवत पुराण), गीता प्रेस, गोरखपुर — अंग्रेज़ी सम्पूर्ण संस्करण, तृतीय स्कन्ध, द्वात्रिंश प्रवचन (शीर्षक ऊपर अध्याय-परिचय में यथावत् दिया गया है)
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम् — श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से अध्याय-दर-अध्याय एक भक्तिपूर्ण यात्रा
- आध्यात्मिक मार्गदर्शन में प्रस्तुत: पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-32-prasthan-ke-do-marg-bhaktiyoga-shreshthata.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट